International Journal of Sanskrit Research 2024; 10(4): 74-77

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2024; 10(4): 74-77
© 2024 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 13-04-2024
Accepted: 14-05-2024

डॉ. लीना चौहान
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, हंसराज महाविद्यालय दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
सन्ध्या राठौर
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, हंसराज महाविद्यालय दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

अथर्ववेद में ऋत–नीति कर्मसिद्धान्त

डॉ. लीना चौहान

DOI: https://doi.org/10.22271/23947519.2024.v10.i4a.2420

प्रस्तावना

वैदिक वाङ्मय में ऋत की विशाल परिकल्पना दी गई है। 'ऋत' एक 'नियम' या 'व्यवस्थित गति' है इसकी व्युत्पत्ति 'ऋ' धातु 'क्त' प्रत्यय के योग से हुई है। ऋत का सिद्धान्त स्वयं में एक अलौकिक एवं दार्शनिक गम्भीरतम अर्थों को समेटे हुए है। पाश्चात्त्य दार्शनिक भी ऋत के स्वरूप को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से स्वीकार करते हैं। इस परिवर्तनशील अखिल ब्रह्माण्ड में जड़–चेतन रूप समस्त वस्तुएँ चाहे उनमें समयानुसार परिवर्तन हो या प्रक्रिया वह किसी एक नियम का अंग अवश्य हैं। इसी ऋत के व्यवस्थित होने के कारण विश्व संचालित है। ऋत के नियम क्षणभंगुर न होकर शाश्वत हैं। प्रकटीकरण के कारण उसके स्वरूप में परिवर्तन आ जाता है।

ऋत–नियम–नीति का भी वाचक है। जो पाश्चात्त्य विद्वान ब्रैडले व्यक्तिगत नैतिकता को विश्वव्यापी नैतिकता से परिस्फुटित मानते हैं जो कि एक निरपेक्ष अन्तर्दृष्टि में निवास करती है। सायण ने ऋत को सत्य, यज्ञ तथा जल कहा है।

ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम्। अजस्त्र धर्ममीमहे।। अथर्व. 6/4/3/1

यहाँ ऋत को वैश्वानर अग्नि कहा गया है। ''ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति।'' ऋत को सूर्य भी कहा है। सूर्य, आदित्य, सविता, रोहित सभी संज्ञा पर्याय शब्द हैं। रोहित यज्ञ का उत्पादक और यज्ञ का मुख है अर्थात सूर्योदय के पश्चात् ही यज्ञ का आरम्भ होता है – रोहितो यज्ञस्य जनिता मुखं च। अथर्व. 13/1/13 पृथिवी पर आग्नेय पदार्थों का प्रमुख केन्द्र सूर्य को ही माना गया है। अतः पृथिवी पर जो अग्नि है वह सूर्य का ही स्वरूप है। सूर्य के तपने से मेघमण्डल में विद्युत बनती है वह विद्युत सूखे घास तथा वृक्षादि पर गिरकर अग्नि उत्पन्न करता है, वेद में कहा गया है कि वह सूर्य ही अग्नि अर्थात् विद्युत है।

रोहितो यज्ञ व्यदधात्। 13/1/1/1
स एति सविता.....। सो अग्निः .....। अथर्व. 13/4/1/1, 5
यास्क ने ऋत को छः नामों से प्रयुक्त किया है –
वट्। श्रत। सत्रा। अद्धा। इत्था। ऋतमिति सत्यस्य।
(ऋतमितिषट् सत्य नामानि) निघण्टु कोश 3.10 पृ. 45
अथर्ववेद के मंत्र में – मन से यथार्थ संकल्प करना ऋत है। वह ऋत वाणी से अयार्थ कथन रूप सत्य शरीर के संताप देने वाला व्रत उपवास और नियम रूप तप, राज्य शब्द आदि विषयों के उपभोग की उपरति, श्रान्ति श्रम, उससे उत्पन्न होने वाला अपूर्वधर्म, वर्णाश्रम के द्वारा किया गया यागदान होम आदि कर्म, उत्पन्न हुआ जगत् – भूत भविष्य से सब उच्छिष्ट ब्रह्म में तदात्मक ओदन में कार्य रूप से नित्य आश्रित है तथा शक्ति सब वस्तुओं की भली प्रकार प्राप्ति सम्पत्ति और सब कायों को पूर्ण करने की शक्ति रूप शरीरगत बल ये सब उस ब्रह्म में समाश्रित हैं –

ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च।
भूतं भविष्यदुच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर्बलं बले।। अथर्व. 11/14/2/17

ऋत का स्वरूप

परब्रह्म स्वरूप ऋत समस्त लोकों को व्याप्त किए हुए है। ऋत एक अटल नियम और सीधा मार्ग है, जिस पर चलकर दिव्य ज्योति प्राप्त की जा सकती है –

अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया।
अदर्शि वि स्रुतिर्दिवः।। ऋ. 1/46/11

ऋत के साहचर्य से सृष्टि चक्र प्रवर्तित हो रहा है। वह अपने सत्य नियमों के द्वारा प्रकृति के समस्त पदार्थों अथवा तत्त्वों को नियमित गतिशील तथा व्यवस्थित बनाए हुए है। सूर्य, चन्द्रमा उषा, ऋतुएँ, दिन–रात ऋत नियमों के अनुरूप चलते हैं। प्रकृति के समान ही वैयक्तिक स्तर पर भी यह सभी प्राणियों के (जीवन–चरित) को नियन्त्रित रखता है।

परि विश्वा भुवनान्यायमृतस्य तन्तुं विततं दृशे कम्।
यत्र देवा अमृतमानशानाः समाने यौनावध्यैरयन्त।।
अथर्व. 2/1/1/5

इस मंत्रार्थ का आशय है कि ऋत का तन्तु लौकिक तथा पारलौकिक जगत दोनों ओर विस्तृत है। लौकिक जगत् में उसका स्वरूप पुण्य–अपुण्य (नैतिक–अनैतिक) है तथा पारलौकिक जगत् में ब्रह्म और साधारण कारणभूत (स्वर्ग–नरक) है। इस प्रकार चारों स्वरूप में दो निषेधपरक तथा अन्य दो विधिपरक हैं।
मंत्रदृष्टा ऋषियों ने मनुष्य व्यवहार के लिए सात मर्यादाएँ निश्चित की हैं –

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामिदेकामभ्यं हुरो गात्।
आयोर्ह स्कम्भं उपमस्य नीडे पथां विसर्ग धरुणेषु तस्थौ।।
ऋ., अथर्ववेद 5/1/1/6

ऋत का सद्वन
अथर्ववेद के मंत्र में कहा गया है – कृष्ण वर्ण वाले मार्ग से सूर्य की किरणें नियमपूर्वक अंतरिक्ष को प्राप्त करके हरण करने के स्वभाव वाली मानों जल से अपने को वस्त्र की भाँति ढ़कती हुई द्यौ आदित्य मण्डल को चली जाती है तथा फिर वे सूर्य की किरणें जल (ऋत) के भवन सूर्यमण्डल से वर्षा करने के लिए आती है और फिर वे जल से पृथिवी को गीली कर देती है। अ. 9/5/2/22

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः।
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम्।।
अथर्व. 12/1/1/36

ऋत का चक्र जगत् में छः ऋतुओं दो अयनों तथा दिन–रात संवत्सर आदि के रूप में परिभ्रमण कर रहा है। मन्त्रार्थों से कहा जा सकता है कि ऋत का स्थान अंतरिक्ष है। वह ऋत शाश्वत नियम एवं अलौकिक है। सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त नैतिकता ऋत की अभिव्यक्ति है। यह विश्वव्यापी शाश्वत नियम की ब्रह्माण्ड में, प्रकृति, देवताओं, विश्व, व्याप्त पदार्थों तथा लौकिक जगत् में महनीय भूमिका है। ब्रह्माण्ड मानों कि जैसें ऋत का सदने हो। उस सदन स्वरूप ब्रह्माण्ड सभी को स्थिर किया हुआ है। ब्रह्मस्वरूप ऋत से सूर्यस्वरूप हिरण्यगर्भ (ऋत) प्रथम उत्पन्न हुए। अथर्व. 4/1/2/6, 1. वह ही ऋत द्यूलोक पृथिवी लोक को सत्यनियमों से ठहराने वाला है उसी ने विशाल द्यूलोक और पृथिवी लोक को घर के समान स्थिर किया, वह विशाल देव प्रकट होता हुआ तथा द्यूलोक, पृथिवी के निवास स्थान को अंतरिक्षलोक को विस्तृत रूप देकर स्थिर किया। अ. 4/1/1/4 तत्पश्चात् उसी प्रथम से छः प्राणी बने, छः साम दिन के छ भागों को वहन करते हैं। षडयोग सीर के पीछे साम साम है, द्यावापृथिवी के और उर्वियों के छः भेदों का वर्णन विद्वान पुरुष करते हैं अथर्व. 8/5/1/16. ऋत के आठ भूत उत्पन्न हुए वे आठ भूत ऋत्विज हैं अदिति आठ उत्पत्ति स्थान वाली है और उसको आठ पुत्र भी है अष्टमी रात्रि के दिन हव्य को स्वीकार करती है –

अष्ट जाता भूता प्रथमजर्तस्याष्टेन्द्रर्त्विजो दैव्या ये।
अष्ट्योनिरदितिरष्टपुत्राष्टमी रात्रिमभि हव्यमेति।।
अथर्व. 8/5/1/21

यहाँ अदिति प्रकृति तथा ऋत पुरुष है। प्रकृति के साथ ऋत का समन्वय उसके महात्म्य को प्रदर्शित करता है। ऋत का चक्र विश्व में घूम रहा है।

ऋत के कार्य
ऋत के शाश्वत कार्यों को स्पष्ट करता हुआ मंत्र में ऋषि कहता है – ऋत के मार्ग को अग्नि सूर्य और चन्द्रमा ये तीन जाते हैं, ये तीनों अपने तेज रूप वीर्य के साथ जाते हैं; इनमें एक शक्ति प्रजासंतति को तृप्त करती है, दूसरी बल को, तीसरी देवरूप योग करने वाले ऋत्विजों के साथ राष्ट्र की रक्षा करती है।

ऋतस्य पन्थामनुतिस्र आगुस्त्रयो घर्मा अनु रेत आगुः।
प्रजामेका जिन्वत्यूर्जमेका राष्ट्रमेका रक्षति देवयूनाम्।।
अथर्व. 8/5/1/13

तुलना करें –

ऋतेन देवः सविता शमायत ऋतस्य शृङ्गमुर्विया वि प्रथे।
ऋतं सासाह महि चित्पृतन्यतो मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम्।।
ऋग्वेद, 8/75/5

उक्त मन्त्रार्थों द्वारा ऋत ब्रह्माण्ड में यान्त्रिक तथा वैयक्तिक दोनों स्तरों पर कार्य कर रहा है। सूर्य का उदयास्त, सूर्य से ही समस्त लोकों का प्रकाशित होना, ऋतुओं का आवागमन, पृथिवी का अपनी धुरी पर परिभ्रमण करना आदि इस परिधि के पीछे जो कार्य कर रहा है अथवा करा रहा है वह ऋत है।

ऋत का कर्म – स्वतन्त्र एवं दृढ़ संकल्प बनाना
ऋत–नियम का पालन समस्त देवता दृढ़ता एवं कठोरता से करते हैं। वे कभी अपने मार्ग से विरत नहीं होते और अनैतिक व्यवहारी को दण्डित करते हैं। वे दृढ़निष्ठ देव व्यक्तिगत जीवन में दृढ़ संकल्पित होने का उपदेश देते हैं। ऋषि प्रार्थना करता है – विजय हमारा हो, उदय हमारा हो, सत्य हमारा हो, तेज हमारा हो, ब्रह्म (ज्ञान) हमारा हो, आत्मप्रकाश हमारा हो, हमारा यज्ञ सफल हो, पशु हमारे हैं, प्रजा संतान हमारी बढ़े और वीर हमारे हैं। अथर्व. 16/2/5/1, 5/3/22 मंत्रों से यह उपदेश मिलता है कि वैयक्तिक स्तर पर प्रार्थी को स्वतन्त्र तथा व्यक्त संकल्प क्रियाशील सत्य सहज भाव के द्वारा की गई स्तुति से जो फल की प्राप्ति होती है वह भी उस ऋत का ही कारण है।

ऋत–सत्य नियम
ऋत का पर्याय कहा जाने वाला शब्द 'सत्य' दो अलग–2 शब्द हैं तथापि वेद में किसी स्थान पर दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं तो कहीं कहीं स्पष्ट विरोधाभास वाले हैं। अरविन्द के विचार में सत्य तो भाव सत्य है और ऋत कर्मरत गतिशील सत्य है – वह दिव्य सत्य जो मन और शरीर दोनों की उचित क्रियाओं को नियमित करता है। ऋत ही ब्रह्म है उस ब्रह्म ने जगत को संचालित किया। संचालन करने में जो नियम बनाए जिनका ऋत भी पालन करता है वह ही 'ऋत'–'सत्य' नियम है। उषा, सूर्य, अग्नि आदि 'ऋतस्य पन्था' का अनुसरण करते हैं अरविन्द कहते है कि 'सत्यं ऋतं वृहत्' सब कुछ सचेतन है तथा ऋत चित है अतः व्यक्तिगत जीवन में भी नियमबद्ध होकर ऋत के मार्ग को अपनाएगें तो सत्चरित्रवान् होगें।
जिस प्रकार ऋत ब्रह्माण्ड में विस्तृत है उसी प्रकार सांसारिक जगत् में यह अग्नि वाणी के रूप में, वायु प्राण के रूप में, जल

विविध रस के रूप से तथा द्यूलोक व पृथिवी लोक अपनी–2 शक्तियों से हमारी शुद्धता करें –

वैश्वानरो रश्मिभिर्नः पुनातु वातः प्राणेनेषिरो नमोभिः।
द्यावा पृथिवी पयसा पयस्वती ऋतावरी यज्ञिये नः पुनीताम्।।
अथर्व. 6/7/1/1

ऋत सत्य नियम का स्वरूप कहीं अग्नि के साहचर्य से तप करने वाला, सूर्य से युक्त उग्र प्रकाश वाला, चन्द्र से संयोजित सौम्य प्रकाश, वायु के साथ गति प्रदान करने वाला तथा जल के साथ पूर्ण शान्ति वाला हो जाता है अथर्व. 9/5/2/26. ऋत विश्व का स्रष्टा, हरणकर्त्ता तथा दण्डकर्त्ता भी है अथर्व. 20/7/18/7, 6/13/5/6.

जैसा कि सत्य है एक या अनेक अवयव शरीर के साथ में जुड़े हुए हैं जहाँ शरीर के एक अवयव में न्यूनता आई वहीं शरीर बेकार हो जाता है अनेक रोग से ग्रसित हो जाता है तथा अन्त में विनष्ट हो जाता है। इसी प्रकार ऋत सत्य नियम आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक रूप से ब्रह्माण्ड से जुड़ा है। इन तीनों रूपों में जब यह नियम यान्त्रिक तथा वैयक्तिक रूप से पालित नहीं होता तब सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण, ऋतुओं की महामारी, अतिवृष्टि अनावृष्टि तथा अनेक प्रकार के रोगादि लग जाते हैं तथा 'निर्ऋति' को प्राप्त होते हैं।

अथर्ववेद में ऋत का अर्थ ओदन के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। सात्विक ओदन का प्राशन करने से मनुष्य पुण्यभूत स्वर्गलोक में सुख देने वाला तथा लेने वाला होता है। असात्विक भोजन (अन्न) ग्रहण करने से अधमगति (नष्ट) को जाता है। अथर्व. 11/2/2/17.

ऋत–नैतिकता

विचार मानवमूल्यों पर आधारित है। किंतु 'ऋत सिद्धान्त' मानव मूल्यों के लिए मानवीय कर्म तथा चारित्रिक श्रेष्ठता का स्तम्भ है। इसी की प्रेरणा से मनुष्य मात्र कर्म तथा आचरण करने में प्रेरित होता है इसलिए ऋषि प्रार्थना करते हैं कि वे हमारे मन को कल्याण के मार्ग में प्रेरित करें।

प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद् भरन्त वह्नयः।
विप्रा ऋतस्य वाहसा।। अथर्व. 20/9/42/2

मंत्रार्थ से यह आशय प्रकट होता है कि जिस सत्य पर देवता चलते हैं मनुष्य उसे यज्ञ उपासना रूप से धारण करते हैं। वे अपने जीवन में उन देवता के जीवनों का प्रकर्ष रूप से वहन करते हैं और वे सत्यनियमों को करने वाले हो जाते हैं। सूर्य प्रतिदिन उदित होकर प्रकाश देता है, यहाँ तात्पर्य यह नहीं कि दिन निकल आया है और मनुष्य उठकर पशु के समान अपनी आजीविका को ढूँढ़ने में ही लगा रहे, अपितु प्राणिमात्र को यह सन्देश है कि जिस प्रकार सूर्य नित्यप्रति उदित होकर संसार के समस्त प्राणियों को समान रूप से एवं प्रकाश एवं तेज प्रदान करता है इसी प्रकार मनुष्य को सभी प्राणियों को समान भाव से देखना चाहिए।

दूसरा नैतिक कर्म यह है कि सूर्य जो प्रतिदिन प्रकाश का दान करता है वह दान–क्रिया एक नैतिक गुण है क्योंकि दान करने से पुण्यफल की प्राप्ति होती है तथा निर्धन या ब्राह्मणादि को दान देने से परोपकार होता है।

तृतीय नैतिक कर्म यह है कि सूर्य जैसे समस्त प्राणी जगत् को अंधकार से प्रकाश की ओर जाने का सन्देश, जिससे प्रत्येक मानव अंधकार, अज्ञानता, अनैतिकता से तथा अवनति से उठकर प्रकाश, ज्ञान, नैतिकता और उन्नति को प्राप्त करे।

चतुर्थ यह कि सूर्य का उदित होना यह एक अटल सत्य नियम है अतः समस्त प्राणी नियमानुसार सत्य का आचरण करें और नियम से उपासना, तप, ध्यान आदि में संलग्न रहें, ये नैतिकता के स्तम्भ हैं।

ऋत का सिद्धान्त वेद में कहीं रौद्र तो कहीं सौम्य रूप में दिखाई देता है। इससे ऐसा प्रत्यक्ष माना जा सकता है कि जहाँ जैसे स्थिति हो मनुष्य को नैतिकता पर चलते हुए दूसरों की सहायता हेतु कहीं दण्ड देने के लिए क्रोधी तो कहीं क्षमा हेतु उदार भाव रखना चाहिए। ये नैतिकता के दिव्य आदर्शों में हैं। वरुण, इन्द्र आदि देवता ऋत के नियमों के प्रमुख देवता हैं। वे ऋत के संरक्षक कर्त्ता भी है।

ऋत का नियम गतिशील नियम है इस नियम से प्राणिमात्र के लिए यह उपदेश है कि इस नियम को गत्यार्थक जानकर नियमों में परिवर्तन करते रहें वे अपने मार्ग से विचलित न हों और जो इसे शाश्वत जानकर कर्मों में गत्यात्मक होते हैं वे उच्चावस्था को प्राप्त होंगे।

इस नियम में वैयक्तिक जीवन के लिए नैतिक पथ पर अग्रसर हेतु क्षमा, दान, साम्यदृष्टि, दृढ़निश्चयता पराक्रम, बल, त्याग, परोपकार आदि कर्म अप्रत्यक्ष रूप से परिलक्षित होते हैं।

ऋत–नीति–कर्म

भारतीय वेद विचारधारा में ऋत जो कि कर्म सिद्धान्त का वाचक है। यह समस्त जगत् में सर्वत्र क्रियात्मक रूप से व्याप्त है। अथर्ववेद का कथन है कि ब्रह्म की उत्पत्ति के साथ ही कर्म उत्पन्न हुआ।

ऋतं सत्यं तपो राष्ट्र श्रमो धर्मश्च कर्म च।
भूतं भविष्यदुच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर्बलं बले।। अथर्व.
11/14/2/17

इस कारण संसार में जितने भी प्राणी हैं कर्मचक्र बंधन में बद्ध हैं। यह कर्म ही इस जगत् का मूल कारण है, क्योंकि जगत् की सृष्टि में पर्यालोचना रूप तप, पूर्वकल्प में प्राणियों में अनुष्ठित पुण्यापुण्य रूप परिपक्व अन्न में उत्पन्न हुआ है –

तपश्चैवास्तां कर्म चान्तमहत्यर्णवे
तपो ह जज्ञे कर्मणस्तत् ते ज्येष्ठमुपासचता।। अथर्व.
11/4/4/6

कर्म सांसारिक मानव जीवन के पूर्वजन्म तथा पुनर्जन्म के साथ–साथ चलता है। इस कर्मचक्र बंधन से कोई भी प्राणी छूट नहीं सकता। मनुष्य न तो कर्मों के न करने मात्र से निष्कर्मता को प्राप्त होता है और न कर्मों को त्यागने मात्र से भगवत्–साक्षात्कार रूप सिद्धि को प्राप्त होता है क्योंकि कोई भी पुरुष किसी काल में क्षणमात्र भी बिना कर्म किए नहीं रह सकता है निःसन्देह सभी पुरुष प्रकृति से उत्पन्न हुए गुणों द्वारा परतंत्र हुए कर्म करते हैं। जैसा कि गीता में कहा गया है –

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति।। 3/4
न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।। 3/5

कर्म शब्द अनेकार्थक माना गया है इसकी व्युत्पत्ति 'कृ' धातु से हुई है। कृत्य, कर्म, संपादन, कर्त्तव्य, नित्य, नैमित्तिक, काम्य, धार्मिक कृत्य कतिपय विद्वानों ने क्रिया को कर्म की संज्ञा माना है। श्रीमद् भगवद्गीता में 'विसर्ग' को कर्म कहा है। नैयायिक वैशेषिक उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण और गमन मानते है। मीमांसकों ने यज्ञ–याग किया को ही कर्म कहा है तथा अन्य सभी को विकर्म–अकर्म कहते हैं।

निष्कर्ष

ऋत एक नैतिक नियम एवं कर्म है। यह नियम शुभ–संकल्प वाला

तथा इसमें स्थायित्व है। सूर्य भी इसी ऋत के कारण अंधकाररूपी शत्रु को नष्ट करता है तथा रश्मि समूह को फैलाता है, स्वयं अटल नियम रूप में स्थिर होकर संसार में सभी को प्रकाशित तथा गतिमान् बनाता है इस प्रकार इसके नियम में क्रमबद्धता है। इसका अनुसरण करने वाले देवता कभी इसका उल्लंघन नहीं करते हैं। वस्तुतः ऋत विश्व का नियामक एवं संचालनकर्ता है।

''असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मामृतम् गमय'' वेद इन पंक्तियों के अर्थानुसार ऋत सत् प्रकाशवान् तथा अमृत है। सत्य और ऋत को बढ़ाने वाले देवताओं को ऋतावा, ऋतावृधा ऋतज्ञा कहा गया है। देवता व्यक्ति को ऋत का अनुसरण तीन प्रकार से कराते हैं – स्वकर्माधिकार, कर्मों के अनुग्रह से, कर्म की गति। वे मनुष्य को सभी आध्यात्मिक, मानसिक तथा शारीरिक अनर्थों के पाप से छुड़ाते हैं। वे सत्यवक्ता को पुष्ट करते हैं तथा असत्य वक्ता को बाँधते हैं।

सन्दर्भ सूची

1. अथर्ववेद संहिता
2. अथर्ववेद सायण भाष्य
3. ऋग्वेद संहिता
4. अरविन्द, वेद रहस्य
5. डॉ. रानी प्रतिभा, वैदिक संहिताओं में आचार मीमांसा
6. वामन, शिवराम आप्टे
7. भगवद्गीता
8. निघण्टु कोश
9. शब्द कल्पद्रुम
10. पं. सातवलेकर, श्री पाद दामोदर, अथर्ववेद भाग–3